कचरा मैदानों से फूटती शैतानी गैसें

प्रमोद भार्गव

मुंबई, दिल्ली, बैंगलोर, अहमदाबाद, गुड़गांव और नोएडा में शैतान की उपज लगने वाली कुछ हरकतें नज़र आ रही हैं। ऐसा केवल उन स्थानों पर ही हो रहा है जहां कचरा मैदानों (डंपिंग ग्राउंड्स) पर बने आलीशान व बहुमंज़िला भवनों में आईटी, बीपीओ, कॉल सेंटर और सायबर कैफे हैं। सीमेंट, कांक्रीट और लोहे से निर्मित इन इमारती भूखण्डों में कंप्यूटर, लेपटॉप, एसी, टीवी, प्रिंटर, फ्रिज, माइक्रोवेव व अन्य इलेक्ट्रॉनिक उपकरण चलते-चलते एकाएक जबाव देने लगते हैं। ऐसा उन भूखण्डों पर ज़्यादा देखने में आ रहा है, जहां एक दशक के भीतर यह इमारती जंगल उगा है। यहां चांदी, पीतल और तांबे के बर्तन व इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों में इस्तेमाल होने वाले कल-पुर्जे काले पड़ जाते हैं। नतीजतन इन पुर्जों की संवेदन क्षमता कम पड़ जाती है। लिहाज़ा कंप्यूटर पर दी जाने वाली क्लिक कमांड का कोई असर नहीं होता। खोजबीन से पता चला है कि इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों में पैदा होने वाली विचित्रताएं दरअसल डंपिंग ग्राउंड में दफन कचरे से लगातार रिस रहीं लैंडफिल गैसों की देन हैं।

लैंडफिल गैसें उन स्थलों से उत्सर्जित होती हैं, जहां गड्ढों और उबड़-खाबड़ ज़मीन का समतलीकरण शहरी कचरे से किया गया हो। इस कचरे में औद्योगिक कचरा भी शामिल हो तो इसमें प्रदूषण की भयानकता और बढ़ जाती है। नियम-कानूनों को ताक पर रखकर लापरवाही से तैयार किए गए भूखण्डों पर खड़ी इमारतों में चल रहे सूचना तकनीक के कारोबार में प्रयुक्त चांदी, तांबा और पीतल के कल-पुर्ज़ों की सेहत लैंडफिल गैसों के संपर्क में आकर बिगड़ जाती है। इनका हमला निर्जीव यांत्रिक उपकरणों पर ही नहीं मानव स्वास्थ्य पर भी प्रतिकूल असर डालता है।

हमारे देश की महानगर पालिकाएं और भवन-निर्माता गड्ढों वाली भूमि के समतलीकरण का बड़ा आसान उपाय खोज लेते हैं: कि रोजाना घरों से निकलने वाले कचरे और इलेक्ट्रॉनिक कचरे से गड्ढों को मुफ्त में पाट दिया जाए, वह भी बिना किसी रासायनिक उपचार के। इस मिश्रित कचरे में मौजूद विभिन्न रसायन परस्पर संपर्क में आकर जब पांच-छह साल बाद रासायनिक क्रियाएं करते हैं, तो इसमें से ज़हरीली लैंडफिल गैसें पैदा होने लगती हैं। इनमें हाइड्रोजन परऑक्साइड, नाइट्रोजन ऑक्साइड्स, मीथेन, कार्बन मोनोऑक्साइड और सल्फर डाईऑक्साइड वगैरह होती हैं।

कचरे के सड़ने से बनने वाली इन बदबूदार गैसों को वैज्ञानिकों ने लैंडफिल गैसों के दर्जे में रखकर

सॉफ्टवेयर इंजीनियर अभिषेक भार्गव की कंपनी ने एक नया सॉफ्टवेयर बनाने का अनुबंध किया था और आज उन्हें उस पर काम शुरू कर देना था। फुर्ती से वे माइंड स्पेस कांप्लेक्स स्थित अपने दफ्तर में पहुंचे। कंप्यूटर, एसी और सीलिंग फैन ऑन किए एक घंटा भी नहीं हुआ था कि कंप्यूटर स्क्रीन धुंधलाने लगी। की-बोर्ड कमांड कंप्यूटर ने नामंज़ूर कर दीं। वे कुछ सोच पाते इसी बीच एसी बैठने लगा और पंखा घरघराकर रुक गया। अभिषेक ने माउस ज़ोर से पटका और माथा पकड़ कर रह गए। इस स्थिति का सामना वे पहली बार नहीं कर रहे थे बल्कि कई दिनों से दफ्तर के अनेक इंजीनियर इस विचित्र स्थिति दो-चार हो रहे थे। तमाम लोगों ने इस हरकत को शैतानी हरकत समझा, तो प्रबंधन ने आलीशन बहुमंज़िला इमारत में वास्तु दोष! पंडितों, वास्तुकारों और तांत्रिकों से अलौकिक शक्तियों के निवारण के उपाय भी कराए गए लेकिन नतीजा ठन-ठन गोपाल! नेशनल सॉलिड वेस्ट एसोसिएशन ऑफ इंडिया के रसायन वैज्ञानिकों ने समस्या की पड़ताल की तो पता चला कि इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों में पैदा होने वाली विचित्रताएं डंपिंग ग्राउंड में दफन कचरे से लगातार रिस रहीं लैंडफिल गैसों की देन हैं।

एक अलग ही श्रेणी बना दी है। दफन कचरे में भीतर ही भीतर ज़हरीला तरल पदार्थ ज़मीन की दरारों में भी रिसता है। यह ज़मीन को जीवों के लिए अनुपयुक्त बना देता है। भूगर्भ में निरंतर बहते रहने वाले जल-स्रोतों में मिलकर यह शुद्ध पानी को ज़हरीला बना देता है। गंधक के अनेक जीवाणुनाशक यौगिक भूमि में फैलकर उसकी उर्वरा क्षमता को नष्ट कर देते हैं।

आधुनिक जीवन शैली बहुत अधिक कचरा पैदा करती है। इसलिए भारत ही नहीं, दुनिया के ज़्यादातर विकसित और विकासशील देश कचरे को ठिकाने लगाने की समस्या से जूझ रहे हैं। लेकिन ज़्यादातर विकसित देशों ने समझदारी बरतते हुए इस कचरे को अपने देशों में ही नष्ट कर देने की कार्रवाई पर रोक लगा दी है। दरअसल पहले इन देशों में भी इस कचरे को धरती में गड्ढे खोदकर दफना देने की छूट थी। लेकिन जिन-जिन क्षेत्रों में यह कचरा दफनाया गया, उन-उन क्षेत्रों में लैंडफिल गैसों के उत्सर्जन से पर्यावरण बुरी तरह प्रभावित होकर खतरनाक बीमारियों का जनक बन गया। जब ये रोग लाइलाज बीमारियों के रूप में पहचाने जाने लगे तो इन देशों का शासन-प्रशासन जागा और उसने कानून बनाकर औद्योगिक व घरेलू कूड़े-कचरे को अपने देश में दफन करने पर सख्त प्रतिबंध लगा दिया। तब इन देशों ने इस कचरे को ठिकाने लगाने के लिए लाचार देशों की तलाश की। और आपको हैरानी होगी कि सबसे लाचार देश निकला भारत। दुनिया के 105 से भी ज़्यादा देश अपना औद्योगिक कचरा भारत के समुद्र तटवर्ती इलाकों में जहाजों से भेजते हैं। इन देशों में अमेरिका, चीन, ब्राज़ील, ऑस्ट्रेलिया, जर्मनी और ब्रिटेन प्रमुख हैं।

नेशनल एनवायरमेंट इंजीनियरिंग रिसर्च इंस्टीट्यूट (नीरी) के एक शोध पत्र के अनुसार वर्ष 1997 से 2005 के बीच भारत में प्लास्टिक कचरे के आयात में 62 फीसदी की बढ़ोतरी हुई है। यह आयात देश में पुनर्शोधन व्यापार को बढ़ावा देने के बहाने किया जाता है। इस क्रम में विचारणीय पहलू यह है कि इस आयातित कचरे में खतरनाक माने जाने वाले ऑर्गेनो-मरक्यूरिक यौगिक निर्धारित मात्रा से 1500 गुना अधिक पाए गए हैं, जो कैंसर जैसी लाइलाज और भयानक बीमारी को जन्म देते हैं।

सर्वोच्च न्यायालय की मूल्यांकन समिति के अनुसार देश में हर साल 44 लाख टन कचरा पैदा होता है। आर्गेनाइज़ेशन फॉर कार्पोरेशन एंड डेवलपमेंट ने इस मात्रा को 50 लाख टन बताया है। इसमें से केवल 38.3 प्रतिशत कचरे का ही पुनर्शोधन किया जा सकता है, जबकि 4.3 प्रतिशत कचरे को जलाकर नष्ट किया जा सकता है। लेकिन इस कचरे को औद्योगिक इकाइयों द्वारा ईमानदारी से पुनर्शोधित न किया जाकर ज़्यादातर जल स्रोतों में धकेल दिया जाता है।

कचरा भण्डारों को नष्ट करने के ऐसे ही फौरी उपायों के चलते एक सर्वे में पर्यावरण नियोजन एवं समन्वय संगठन (एप्को) ने पाया है कि हमारे देश के पेयजल में 750 से 1000 मिलीग्राम प्रति लीटर तक नाइट्रेट मिला हुआ है और अधिकांश आबादी को बिना किसी रासायनिक उपचार के पानी प्रदाय किया जा रहा है, जो लोगों के स्वास्थ्य पर बुरा असर डालता है। एप्को के अनुसार नाइट्रेट बढ़ने का प्रमुख कारण औद्यौगिक कचरा, मानव व पशु मल है।

ऐसे ही कारणों से लैंडफिल गैसों का उत्सर्जन बढ़ रहा है। नतीजतन बच्चों में ब्लू बेबी सिंड्रोम जैसी बीमारी फैल रही है। इन गैसों के आंख, गले और नाक में स्थित श्लेष्मा परत के संपर्क में आने से दमा, सांस, त्वचा और एलर्जी की बीमारियां बढ़ रही हैं। कचरा मैदानों के ऊपर बने भवनों में रहने वाले लोगों, खास तौर से महिलाओं में मूत्राशय का कैंसर होने की आशंका बढ़ जाती है। लैंडफिल गैसें इन खतरों को चार गुना बढ़ा देती हैं। यह प्रदूषण गर्भ में पल रहे शिशु को भी प्रभावित करता है।

नियमानुसार कचरा मैदानों में भवन निर्माण का सिलसिला 15 साल बाद होना चाहिए। इस लंबी अवधि में कचरे के सड़ने की प्रक्रिया पूर्ण होकर लैंडफिल गैसों का उत्सर्जन भी समाप्त हो जाता है और जल में घुलनशील तरल पदार्थ का बनना भी बंद हो जाता है। लेकिन प्रकृति की इस नैसर्गिक प्रक्रिया के पूर्ण होने से पहले ही हम ज़मीन के समतल होने के तत्काल बाद आलीशान इमारतें खड़ी करना शुरू कर देते हैं। नतीजा भुगतना होता है उस क्षेत्र में रहने

वाली आबादी और इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों को।

अब इस औद्योगिक व घरेलू कचरे को नष्ट करने के प्राकृतिक उपाय भी सामने आ रहे हैं। हालांकि हमारे देश के ग्रामीण अंचलों में घरेलू कचरे व मानव एवं पशु मल-मूत्र को घर के बाहर ही घूरे में प्रोसेस करके खाद बनाने की परंपरा रही है। इसके चलते कचरा महामारी का रूप धारण कर जानलेवा बीमारियों का पर्याय न बनते हुए खेत की ज़रूरत के लिए ऐसी खाद में परिवर्तित होता है, जो फसल की उत्पादकता व पौष्टिकता बढ़ाती है।

अब एक ऐसा ही अनूठा प्रयोग औद्योगिक व घरेलू ज़हरीले कचरे को नष्ट करने में सामने आया है। अभी तक हम केंचुओं का इस्तेमाल खेतों की उत्पादकता बढ़ाने के लिए वर्मी कंपोस्ट खाद के निर्माण में करते रहे हैं। हालांकि खेतों की उर्वरा क्षमता बढ़ाने में केंचुओं की उपयोगिता सर्वविदित है, पर अब औद्योगिक कचरे को केंचुओं से निर्मित वर्मीकल्चर से ठिकाने लगाने का सफल प्रयोग हुआ है। अहमदाबाद के निकट मुथिया गांव में एक पायलट परियोजना शुरू की गई है। इसके तहत पिछले एक साल के भीतर जमा 60 हज़ार टन कचरे में 50 हज़ार केंचुए छोड़े गए थे। चमत्कारिक ढंग से केंचुओं ने इस कचरे का सफाया कर दिया। फलस्वरूप यह स्थल पूरी तरह प्राकृतिक ढंग से ज़हर के प्रदूषण से मुक्त हो गया। लैंडफिल गैसों से सुरक्षा के लिए कचरे को नष्ट करने के कुछ ऐसे ही प्राकृतिक उपाय अमल में लाने होंगे, जिससे कचरा मैदानों में बसी आबादी व इलेक्ट्रॉनिक उपकरण सुरक्षित रहें। ***(स्रोत फीचर्स)***